Indian Streams Research Journal ISSN 2230-7850 Impact Factor : 3.1560 (UIF)
Volume - 5 | Issue - 3 | April - 2015 Available online at www.lbp.world

संत मीरा का विद्रोह

प्रा.भगवान आदटराव
संतोष भीमराव पाटील महाविद्यालय, मंद्रुप,तहसील- द. सोलापुर,जि- सोलापुर

प्रस्तावना :

हिंदी के मध्ययुगीन भक्ति साहित्य में मीराबाई का स्थान विशिष्ट है। वे एक कृष्ण-भक्त कवयित्रि हैं। उन्होंने राजस्थान की वीरभूमि में सगुण भक्ति रस की कोमल धारा को प्रवाहित किया है। उनकी भक्ति और उनका भक्ति-मार्ग हिंदी के भक्ति साहित्य में विशेष उल्लेखीय है। इसी के द्वारा उन्होंने नारी का सामाजिक जीवन अभिव्यक्त किया है। स्वयं वह एक भक्त होने के साथ-साथ नारी होने से, उन्होंने अपने कुछ पदों मे नारी-जीवन को व्यक्त किया है। उनका यह नारी-जीवन आत्माभिव्यक्ति है। पर यह मात्र उनकी ही जीवनाभिव्यक्ति नहीं, तो तत्कालीन समाज की सामंती- सभ्यता में नारी-स्थिति कैसी थी? इसकी साक्ष्य है। 'वे मध्यकालीन सामंती व्यवस्था की पीडित नारी, भक्त कवयित्री हैं।' अत: उन्होंने अपने पदों में केवल स्वयं का ही जीवन व्यक्त नहीं किया, तो उसके साथ-साथ अपने समकालीन परिवेश को भी उजागर किया है। इस संबंध में विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है- "मीरा की भावना उस समाज की नारी भावना है, जहाँ नारी अपने प्रेम की अभिव्यक्ति सहज तौर पर नहीं कर सकती।" प्रकारांतर से मीराबाई ने अपनी भक्ति के द्वारा नारी की जीवनाभिव्यक्ति के साथ सामंतवाद का विरोध किया है। क्योंकि सामंतवाद में नारी का स्वतंत्र आस्तित्व मान्य ही नहीं है। वह मात्र एक भोग्या है, कामिनी है। उसका धर्म केवल पति-सेवा और संतती निर्माण करना है। इसके अलावा उसकी और कोई अहमियत नहीं है। सामंतशाही की इस सभ्यता का मीराबाई ने अपनी पध्दति से याने भक्ति-मार्ग से विरोध किया है। चूँकि उनकी कृष्ण-भक्ति तथा मार्ग दोनों के माध्यम से उनका व्यवस्था के विरोध में विद्रोह संसूचित हुआ है। अस्तु, उनके निम्न पद में उनकी भक्ति, प्रीति, लगन एवं विद्रोह इस प्रकार प्रकट हुआ है-

"म्हां गिरधर आगां नाच्यारी।
णाच णाच म्हां रसिक रिझावां, प्रीत पुरातन ज्याच्यांरी।
स्याम प्रीत रो बांधि घूँघरयां गोहण म्हारो सांच्या री।
लोक-लाज कुलरा मरज्यादां जगमें ठोक णाराख्यां री।
प्रीतम पल छब णा विसरावाँ, मीरा हरि रंग राच्यां री।"

मीराबाई के पदों में उनके व्यक्तित्व की नीडरता, निर्भिकता एवं स्वाधीनता की चेतना दृष्टिगोचर होती है। चूँकि उन पदों में निरंतर लोक-लाज और कुल की मर्यादा के बंधन तोडने का उल्लेख प्राप्त होता है। उनके इस व्यक्तित्त्व को डॉ. कृष्णदेव शर्मा ने इस तरह से रेखांकित किया है- "मीरां दुनियां की नजरो से छुपकर नहीं बल्कि ढोल बजाकर संसार की सभी सामाजिक एवं नैतिक मान्यताओं को ताक पर रखकर, शिष्टाचार और सभ्यता के सभी आवरणों को भेदकर अपने 'मुरली मनोहर' को रिझाने में ही कृतकृत्य समझती है।"

मीराबाई की कृष्ण-भक्ति उनके बाल्यकाल की देन है। उनकी बाल्यावस्था में उनके माँ की मृत्यू होने पर उनके दादाजी राव दूदाजी ने उन्हें पाल-पोसकर बडा किया। उनके संरक्षण में रहते हुए मीराबाई पर वैष्णव भक्ति का गहरा प्रभाव पडा और गिरिधरलाल अर्थात कृष्ण उनके इष्ट हो गए। बालपन में गिरिधरलाल से जुडा स्नेह का धागा कालांतर में पक्की डोर बन गया। नतीजा, मीराबाई आजीवन अपने इष्ठ गिरिधरलाल से अलग नहीं हो पाई। उनकी यह कृष्ण-भक्ति तथा उनके बाल्यकाल की घटनाओं के संबंध में तेजपाल चौधरी ने लिखा है- "कहते हैं, जब वे सात-आठ साल की थीं, तो परिवार में किसी का विवाह था। दुल्हे को देखकर मीरा ने मचलकर पूछा- 'मेरा दुल्हा कहाँ है? किसी ने बच्ची को बहलने के लिए कृष्ण भगवान की मूर्ति की ओर संकेत करते हुए कह दिया, 'तेरा दुल्हा वह है।' बस तब से मीरा ने कृष्ण को ही अपना दुल्हा माना और विवाह के बाद भी वे कृष्ण को ही दुल्हा मानती रहीं। इतना ही नहीं, कुंवर भोजराज की मृत्यु के बाद भी उन्होंने अपने आपको विधवा नहीं माना। चिरसुहागिन ही बनी रहीं। एक और जनश्रुति भी कृष्ण की मूर्ति के ही संबंध में है। एक बार मीरा के घर एक महात्मा आये। उनके पास कृष्ण भगवान की एक मूर्ति थी। मीरा ने उनसे मूर्ति माँगी तो साधु ने देने से इंकार कर दिया। साधु चले गये। मीरा उदास हो गयी। कहते हैं, स्वयं कृष्ण भगवान ने स्वप्न में साधु को आदेश दिया कि मूर्ति मीरा को दे दें। मीरा मूर्ति पाकर बहुत खुश हुई।" तत्पश्चात् विवाह के बाद मीरा उस मूर्ति को अपने साथ ससुराल भी ले आयी।

मीराबाई का जन्म और विवाह दोनों राजमहल में हुए। वे एक राजकुमारी और राजवधू रही। यद्यपि उन्होंने राजघराने का राजस्व यथेच्छ उपभोगा नहीं। उदयपुर के सिसौदिया वंश के महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ उनका विवाह हो गया। परंतु पति-प्रेम और वैवाहिक सुख उन्हें ज्यादा दिनों तक नसीब नहीं हुआ। विवाह के पश्चात् लगभग सात-आठ वर्ष के भीतर पति भोजराज की अकाल मृत्यू हो गई और अल्पावधि का सुखमयी दाम्पत्य-जीवन अप्रत्याशित रूप से वैध्यव्य में परिवर्तित हो गया। तद्नंतर चार वर्ष बाद ही पिता की भी मृत्यु हो गई। उसके बाद अंतीम सहारा ससूर महाराणा साँगा की भी शीघ्र ही मौत हो गई। एक के बाद एक एक क्रमाश: प्रियजनों की मृत्यु, तत्पूर्व बाल्यकाल में माँ की असमय मौत ने मीराबाई के नारी हृदय को आंदोलित कर दिया। उनके हृदय में एक प्रकार की बेचैनी छा गई। मन विकल हो गया और इसी विकलता में हार से विरक्त हो गई। क्योंकि ससूर की मौत के बाद ससुराल में उनसे स्नेह जतानेवाला अन्य कोई नहीं था। जो थे-वे केवल प्रवंचक। अत: ऐसी संकटकाली स्थिति में मीराबाई को जीवन जीने का एकमात्र आधार गिरिधरलाल दिखायी दिए, जो उनके बचपन से ही आराध्य रहें। चूँकि उन्होंने परिस्थिती से व्याकुल होकर भक्ति की शरण ली और अपने गिरिधर की भक्ति में ऐसी डूब गई कि उनके ही रंग में रंग गई-

"राणा जी मैं तो साँवरे रंग राँची।
साज सिंगार बांध पग घुँघरू, लोक-लाज तज नाची।"

मीराबाई ने अपने परम प्रिय कृष्ण के लिए घर-परिवार और कुल की मर्यादा को त्याग दिया। लोक-लाज की चिंता न कर भगवद् दर्शन और साधुओं के साथ सत्संग किया। मंदिर में पग घुँघरू, बांध, करताली बजा-बजाकर कृष्ण की आराधना की-

"म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसराँ णाँ कूयाँ।
दूसरा णा कूयाँ साधाँ सकल लोक जूयाँ।
आया छाँड्याँ, बन्धा, छाँड्याँ, छाँड्याँ सगाँ सूयाँ।"

मीराबाई का इस प्रकर उन्मुक्तता से कृष्ण-भक्ति में लीन होना और बेबाकी से साधू-संगति करना, उनके निरंकुश सत्ताधारी सामंती प्रवृत्ति के देवर राणा। विक्रमाजीत सिंह तथा सास और ननंद को नहीं भाया। नतीजा, उन्होंने मीरांबाई पर पाबंदी लगानी चाही। पर प्रेम की प्यासी, मुसिबतों की मारी मीराबाई अपने इष्ठ के लिए किसी बंधन में नहीं बंधी। विपरित सामाजिक बंधनों को तोड पाँव में घूँघरू डालकर, ताली दे-देकर नाच उठी। उनके इस विद्रोह पर विक्रमाजीत सिंह, सास और ननंद ने उन्हें अनेक यातनाएँ दी। पहरे बिठाये। यही नहीं तो उन्हें मार डालने के लिए नए-नए हथकंडे भी अपनाएँ, जिसका उल्लेख मीराबाई ने अपने निम्न पदों में किया है-

"मीराँ मगन भई हरि के गुण गाय।
सँप पिटारा राणा भेज्यों, मीराँ हाथ दियो जाय।
न्याह धोय जब देखने लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्याह धोय जब पीवन लागी, हो गई अमर अँचाय।
सूल सेज राजा ने भेजी, दिज्यों मीराँ सुलाय।
साँझ भई मीराँ सोवन लागी, मानो फूल बिछाय।
मीराँ के प्रभु सदा सुहाइ राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय।"

मीराबाई के देवर, सास और ननंद ने मीराबाई को विविध प्रकार से यातनाएँ देकर, पीडित कर भगवद्भक्ति से परावृत करना चाहा। पर कर नहीं पाएँ। दूसरी ओर मीराबाई सामंतशाही की सशक्त श्रृंखलाओं को तोडकर स्वच्छंदता से भगवान कृष्ण के चरणों में अर्पित होने के लिए व्यग्र रही। अस्तु उसने अपने परिवेश के किन्हीं बंधनों और वर्जनाओं को स्वीकारा नहीं। एक मस्तमौला की भाँति अपने मार्ग पर चलती रही।

सारांश मीराबाई मध्ययुग का असाधारण और विद्रोही नारी- रूप है। उनका समकालीन परिवेश नारी- स्थिति की दृष्टि से अधोमुखी रहा है। वे जिस परिवेश में जन्मी वह परिवेश पुरुष - पोषक, सामंतवादी प्रवृत्ति का रहा है। चूँकि उस परिवेश में 'नारी' व्यक्ति नहीं संपत्ति समझी जाती रही है। उसकी ओर सुख देनेवाली तथा संतती निर्माण करनेवाली मात्र मशीन के रूप में देखा जाता रहा है। उसे व्यक्ति के रूप में न देखकर उसकी अवहेलना ही जी जाती रही है। लेकिन मीराबाई उन नारियों में से रही हैं, जो अपनी अवहेलना होते न देख पाती। फलतः उन्होंने तत्कालीन धार्मिक साधन भक्ति मार्ग के द्वारा सामंतवादी प्रवृत्ति का और अधोमुखी नारी-स्थिति का प्रखर विरोध किया है। उनके विद्रोही व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है- "मीरा सामंतवादी रूढियों को तोडेन के लिए गिरिधर भक्ति का संकल्प लेकर निवास के बाहर निकल आई हैं, एक प्रकार से एक विशाल जनआंदोलन में बहुत बडा जोखिम उठा कर कूद पडी है।" इस संमंध में विश्वनाथ त्रिपाठीजी ने भी यही लिखा है की, "मीरा का व्यक्तित्व मध्यकालीन नारी जीवन को देखते हुए, इतना असामान्य है कि उनके विषय में नाना प्रकार की कहानियाँ और किंवदंतियाँ प्रचति रहीं। इतना तय है कि उनका गृहस्थजीवन उनके पति की मृत्यु के कारण छिन्न-भिन्न हो गया था। यह भी तय है कि वह घर की चारदीवारी में रहकर सामान्य विधवा-जीवन ही नहीं बिताना चाहती थीं, साधुसंगति भी करना चाहती थी।" मीराबाई का संपूर्ण जीवन वेदना और पीडा का इतिहास रहा है। पर इसी इतिहास से उन्होंने अपने असामान्य व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व का निर्माण कर, हिंदी के भक्ति - साहित्य में अद्वितीय स्थान प्राप्त किया है।